शोध-चिंतन पत्रिका: विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका
वर्ष: 3, अंक:4; जनवरी-जून, 2022
पृष्ठ संख्या : 74-82

जनजातीय कला एवं साहित्य

✍ डॉ. अमिता

शोध-सार :

जनजातीय कला और संस्कृति आत्माभिव्यक्ति का परिचायक होती है। उनकी इस अभिव्यक्ति का सामाजिक महत्व होता है। उनके विचार स्व निर्मित होते हैं, उन पर किसी प्रकार का राजनीतिक प्रभाव नहीं होता। आदिम जनजातीय कलाएँ सहज एवं स्वाभाविक होती हैं। देश के भिन्न-भिन्न हिस्सों में विविध प्रकार की जनजातीय कलाएँ विद्यमान हैं जिन्हें जनजाति साहित्य के अंतर्गत समाहित किया गया है। प्रस्तुत लेख में जनजातीय साहित्य के विविध पहलुओं को रेखांकित करते हुए साहित्य में उनकी महत्ता को स्पष्ट किया गया है।

बीज शब्द: *जनजातीय दर्शन, प्रकृति निसर्ग, बिंब, प्रतीक*

प्रस्तावना:

जनजातियों में 'कला कला के लिए नहीं होती', उनके लिए कला का सामाजिक महत्व होता है। उनके लिए कला का लक्ष्य मात्र सौंदर्य अथवा अलंकरण नहीं होता । उनके लिए कला का अर्थ जीवन की तपिश से गुजरते हुए अपने आप को अभिव्यक्त करना है। एक लेखक ने पश्चिमी अफ्रीका की कलाओं के विषय में अपनी पुस्तक में लिखा है

> आदिवासियों की कला सर्वाधिक शुद्ध और आडंबर रहित होती है , इसका कुछ कारण तो यह है कि यह धार्मिक भावनाओं और आध्यात्मिक अनुभूति से प्रेरित होती है और कुछ इसलिए कि यह कला के रूप में पूर्ण रूप से अनात्मव्यंजक है। इस कला में इस प्रकार के कौशल की कोई गुंजाइश नहीं है, जिसे कोई भी अयोग्य व्यक्ति सीख ले और ना ही इसमें ऐसी तकनीकी कलाबाजियों का स्थान है, जिन्हें प्रेरणाजनित कृति के रूप में प्रस्तुत किया जा सके।(वेरियर 4-5)

जनजातीय कलाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि यह औपनिवेशिक विचारों और प्रभावों से मुक्त होती हैं। कथित आधुनिकता के नाम पर ये औपनिवेशिकता का अनुगामी नहीं हैं, बल्कि इनकी मौलिकता ही देशज आधुनिक की प्रस्तावक है। आदिम जनजातीय कलाएँ सहज, सरल और बिलकुल निर्मल जीवन को प्रतिबिंबित करती हैं। जनजातीय कलाएँ समुदायगत होकर भी क्षेत्रीय अथवा आंचलिक स्वरूप रखती हैं। जनजातियों का सर्वाधिक सहज और तत्काल स्फुरित कला का रूप भित्तिचित्रण परंपरा का है, जिसमें सभी प्रकार के आकार और अभिप्राय चित्रित किये जाते हैं। जनजातीय चित्रों में सीमित और स्थानीय रंगों का प्रयोग होता है, जिनमें गेरु, खड़िया मिट्टी, पीली मिट्टी, दाल-चावल या हल्दी का चूर्ण, चुना आदि होते हैं । भित्तिचित्रों के विषय में मानवाकृतियां,पनिहारिन, पशु-पक्षी, प्रकृति आखेटक ,दैनिक जीवन, बैलगाड़ी, खेत -खलियान, युगल और कभी-कभी कार ,विमान आदि भी होते हैं।

अंगालेखन (गोदना) आदिवासी चित्रांकन की एक प्रमुख पहचान है ,जो उनके अंगों पर आभूषण के समान होते हैं। अंगालेखन स्त्री और पुरुष दोनों में लोकप्रिय है, किंतु स्त्रियाँ विशेष रूचि लेती हैं। यह आकार किसी मेले या घर में बनाये जाते हैं। इन आकारों का प्रकार प्रतीकात्मक ज्यामितीय और सुस्पष्ट होता है।

भारत के सभी क्षेत्रों की जनजाति मृण शिल्प (टेराकोटा) के लिए प्रसिद्ध है। अनुष्ठान और गृहोपयोगी वस्तुओं में मृणशिल्प का विशेष महत्व होता है। इन मृणशिल्प का विषय घोड़ा- हाथी, ऊँट, मयूर ,मानव, विविध प्रकार के पक्षी व प्रकृति के अतिरिक्त देवी देवता भी होते हैं जो घर के सभी लोग बनाते हैं। अनेक आदिवासी लोगों में अनाज संग्रह के विशाल मिट्टी के पात्र विविध प्रकार के अभिप्राय और अभिकल्पों से अलंकृत होते हैं।

जनजातीय काष्ठकला अपनी विशेषता एवं अनूठेपन के कारण प्रसिद्ध है। किन्नौर की हस्तकलाओं में काष्ठकला का एक विशेष योगदान माना जाता है। काष्ठ का भवन, मूर्तियाँ, दरवाजे, वाद्ययंत्र आदि में प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। किन्नौर की काष्ठकला में कश्मीर और तिब्बत का

प्रभाव दिखाई पड़ता है। किन्नौर के गोन्फ (बौद्ध मठ) में अनेक प्रकार की मूर्तियाँ देखने को मिलती हैं। काष्ठकला के लिए देवदार और अखरोट की लकड़ी को सर्वोतम माना जाता है। इन लकड़ियों पर देवी-देवता, बोधिसत्वों के चित्र, गंधर्व, ड्रेगन, और नृत्य करती अप्सराएँ, एवं शंख आदि की आकृतियाँ उभरी होती हैं। यहाँ पारंपरिक भवनों का निर्माण लकड़ी ,मिट्टी और पत्थरों से होता है।लिपि के अविष्कार के पूर्व आदिवासी चित्रों के माध्यम से संवाद किया करते थे। शादी, पूजा, विधि का दीवारों पर चित्र बनाकर आदिवासी अपनी संस्कृति का दर्शन करवाते थे। महाराष्ट्र के खानदेश में भील आदिवासी समुदाय में विवाह के कार्यक्रम में घर की दीवारों पर हल्दी, कुमकुम से हल-बक्खर, घर, बैल, मुर्गियाँ, बकरियाँ, बत्तख, फूल, पौधे, वृक्ष, खेती, ढोल, बिरी, बाँसुरी, और नृत्य करने वाले दल आदि चित्रों से आदिवासी परम्पराओं को दर्शाने वाली संस्कृति संबंधी कला का प्रदर्शन किया जाता है। विवाह में चौक पूरने का विशेष महत्व होता है। चौक के बिना शादी-विवाह सम्पन्न ही नहीं होता है। चौक पूजा में देवी-देवता, घर-खेती, हल-बक्खर और शिकार, कुल मिलाकर विवाह वाले घर की दीवारों पर आदिवासी जीवन मूल्यों का सम्पूर्ण दर्शन विभिन्न चित्रों के माध्यम से झलकता है। इस चित्रकला को वारली पेंटिंग के नाम से जाना जाता है। आज वारली पेंटिंग पूरे विश्व में प्रसिद्ध है।कृषि से जुड़ी हस्तकला का आदिवासी जीवन में एक विशेष महत्व होता है। बड़ो लोगों का जीवन मूलतः कृषि पर ही आधारित होता है। कृषि से जुड़ी हस्तकलाएँ विशेषकर बाँस और लकड़ी परखच्चों से बनी होती हैं। इनमें से 'नाङल' (हल) , 'जुंगाल'/'जंगल', 'लावथि', 'मै', 'बेदा', 'खाबनि'/'हासिनी', 'हुखेन', 'हुलाबारि', 'सिलि', 'मुखा', 'रयना', और 'खफ्रि' आदि उल्लेखनीय हैं।

'नाङल' लकड़ी का बना होता है। 'जुंगाल' या 'जंगल' लकड़ी से भी बनाये जाते और बाँस से भी बनते हैं। जब लकड़ी की कमी होती है तो इनको बाँस से भी बनाया जाता है। 'नाङल' अधिकतर प्रौढ़ कटहल के पेड़ से बनाया जाता है। कृषि-प्रधान एक आदिवासी परिवार के लिए 'नाङल' किसी जिंदगी के समान मूल्यवान होता है। 'नाङल' की मुट्ठियों को हाथ में पकड़कर ही किसान अपने सपने

बुनते हैं।महाराष्ट्र के खानदेश के गांवों में भील आदिवासी बहुत ही धूम-धाम से दीवाली मनाते हैं। इस समय गाँव में विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता। इसमें आदिवासी अपनी-अपनी कलाओं का प्रदर्शन करते हैं। गाँव की एक विशाल चौपाल या खुली जगह में नाटक खेले जाते थे। इन अवसरों पर शहद निकालना, शिकार पर जाना, शराब की लत आदि विषयों से संबंधित नाट्य प्रस्तुत किये जाते हैं, जिससे आदिवासियों को बहुत सारी जानकारियाँ प्राप्त होती थीं और साथ में मनोरंजन हो जाता था।

भील जनजाति के त्योहार एवं काला के संदर्भ में सोनवणे लिखते हैं-

> भील जनजातीय होली का त्योहार, सरकारी होली के पूर्व आरंभ होता है। इन पाँच दिनों के भीतर हर गाँव की होली का दिन तय होता है। ढोल, तूर, मांदला जैसे साजबाज बजाकर होली का त्योहार मनाया जाता है। लोग शाम से ही होली के इर्द गिर्द इकट्ठे होकर रातभर नाचते हैं, भोर में होली जलाकर विधिवत पूजा कर लोग अपने अपनेधरों को लौटते हैं। इस समय गेर, बुधे बाबा कलात्मक वेश धारण कर पाँच दिनों तक गाँव-गाँव जाकर अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं। बांस की तिलियों से बने सुन्दर मुकुट पर रंग-बिरंगे कागज चिपकाकर उसे सिर में पहने, कमर में घुँघरू कद्दू बांधकर पाँच दिनों तक होली का नृत्य किया जाता है।(सोनवणे 46)

आदिवासी समाज मूलतः प्रकृतिजीवी और उत्सवधर्मी समाज है, उसके यहाँ गायन-वादन और नृत्य का अपना अमिट स्थान है। विभिन्न लोकपर्वों, फसलों और ऋतुओं पर असंख्य गीत-लोकगीत गाये जाने का चलन है। वर्तमान तकनीक, वैज्ञानिक अविष्कार और बाजार की पहुँच भी अब आदिवासी अचंल तक हुई है। वर्तमान जनजातीय गीतों में इसकी भी धमक सुनी जा सकती है।

जनजातीय लोक में साहित्य सहित विविध कला-माध्यमों का विकास तथाकथित मुख्यधारा से पहले हो चुका था लेकिन वहाँ साहित्य सृजन की परंपरा मूलत: मौखिक रही।

जनजातीय साहित्य के संदर्भ में प्रसिद्ध आदिवासी एक्टीविस्ट, कथाकार व कवयित्री रमणिका गुप्ता कहती हैं-

> मैं जनजातीय साहित्य उसी को मानती हूँ, जो जनजातियों ने लिखा और भोगा है। उसे जनजातीय समस्याओं, सांस्कृतिक, राजनीतिक व आर्थिक स्थितियों तथा उनकी जीवन-शैली पर आधारित होना होगा। अर्थात् जनजातियों द्वारा जनजातियों के लिए जनजातियों पर लिखा गया साहित्य जनजातीय साहित्य कहलाता है।(उषाकीर्ति, पांडेय, प्रसाद, सं 2012:30)

आदिवासी लेखिका वंदना टेटे की स्थापना यह है-

> ग़ैर-आदिवासियों द्वारा आदिवासियों पर रिसर्च करके लिखी जा रही रचनाएँ शोध साहित्य है, आदिवासी साहित्य नहीं। आदिवासियत को नहीं समझने वाले हिंदी-अंग्रेज़ी के लेखक आदिवासी साहित्य लिख भी नहीं सकते। सुनी-सुनाई बातों से आदिवासी जीवन का सच प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। (आदिवासी साहित्य पर जे.एन.यू. में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में वंदना टेटे द्वारा दिये गये व्याख्यान से)

आज़ादी के पश्चात् प्रकाश में आये अस्मितावादी विमर्शों में दलित विमर्श एवं स्त्री विमर्श के बाद सबसे नया विमर्श जनजातीय विमर्श है। अब जनजातीय चेतना से युक्त जनजातीय साहित्य हिंदी साहित्य पटल पर अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुका है। आज जनजातीय साहित्य हिंदी के अलावा लगभग 100 जनजातीय भाषाओं में प्रचुर मात्रा में लिखा जा रहा है। दशकों के संघर्ष और प्रतिरोध के पश्चात् आज जनजातीय साहित्य को स्वायत्त विषय के रूप में केन्द्रीय परिधि में लाया जा रहा है, जनजातीय समाज व साहित्य पर निरन्तर पर चर्चा की जा रही है।

जनजातीय साहित्य की अवधारणा को लेकर जनजाति एवं ग़ैर- जनजाति दृष्टि में तीन तरह के मत हैं। पहला मत यह है कि जनजाति विषय पर लिखा गया साहित्य जनजातीय साहित्य है। यह अवधारणा ग़ैर- जनजातीय लेखकों की है। संजीव, राकेश कुमार सिंह, महुआ माजी, रमणिका गुप्ता, बजरंग तिवारी आदि इसके समर्थक रहे हैं। दूसरे मत के अनुसार जनजातियों द्वारा लिखा गया

साहित्य जनजाति साहित्य है। इस अवधारणा से संबंधित साहित्यकार/लेखक जन्मना एवं स्वानुभूति के आधार पर जनजातियों द्वारा लिखे गए साहित्य को ही जनजातीय साहित्य मानते हैं। तीसरा मत यह स्वीकार करता है कि जनजातीय दर्शन के तत्त्वों वाला साहित्य ही जनजातीय साहित्य है।

इनमें से तीसरी अवधारणा को जनजातीय साहित्य की परिभाषा के सर्वाधिक नज़दीक माना जा सकता है। जनजातीय दर्शन का स्वरूप क्या है और आदिवासी साहित्य में इसकी पहचान कैसे करेंगे, इसके जवाब में कह सकते हैं कि जनजातियों के जीवन व समाज से संबंधित प्रत्येक विशेषता, परम्पराएँ जैसे-प्रकृति के सान्निध्य में रहना, मानवेतर प्राणी जगत के साथ सह-अस्तित्व, अपने आप में खुलापन, सामूहिकता, सहभागिता, जनजातीय संस्कृति, जीवन-शैली, उनकी अपनी समस्याएँ, स्वतंत्रता, जल, जंगल, ज़मीन, अपनी मातृभाषा, अपना इतिहास, लोककथाएँ, मुहावरे, मिथक, विकास की अपनी परिभाषा इत्यादि सब जनजातीय दर्शन के अंतर्गत निहित हैं ।समतापूर्ण विश्वास, श्रम, संगीत व जीवनराग से उपजा दर्शन ही जनजातीय दर्शन है। जनजातीय दर्शन में श्रेष्ठ और निकृष्ट का कोई विभाजन नहीं है, सुंदर-असुंदर जैसी कोई मान्यता नहीं है। जनजातीय दर्शन में प्रत्येक चीज़ अभिराम है। वह सहजीविता, समानता, प्रकृति प्रेम व श्रेष्ठ जीवन मूल्यों पर आधारित है। जनजातीय संस्कृति जनजातीय जीवन और समाज का संस्कार है। इसमें प्रकृतिगत समता, उन्मुक्तता, निश्छलता, सहजता, सामूहिकता एवं शोषण मुक्तता की विशाल हृदयता है। इस संस्कृति में कोई आडम्बर एवं भेदभाव नहीं है। जनजातीय साहित्य की मूल प्रेरणा स्त्रोत् 'प्रकृति' निसर्ग है। जनजातीय जीवन दर्शन में सत्ता रूपी साहित्य के लिए कोई स्थान नहीं है। जनजातीय जीवन दृष्टि में मनुष्य का जितना महत्त्व है, उतना ही पशु-पक्षी, नदी-पहाड़, वनस्पति, कीट-पंतग, नाला,वृक्ष प्रकृति की प्रत्येक जड़-चेतन रचना का है। यहां मनुष्य केंद्र में नहीं है, वह अन्य सभी के साथ सह -अस्तित्व के रूप में है। जनजातीय साहित्य की अपनी भावभूमि है, सौंदर्य बोध है, विश्वदृष्टि है। सामूहिक मूल्यों एवं सह अस्तित्व में अटूट विश्वास ही उसकी विशेषता है। जनजातीय

दर्शन में प्रकृति और पुरखों के प्रति आभार का भाव निहित होता है। यह साहित्य समूचे जीव-जगत को समान महत्त्व देकर मनुष्य की श्रेष्ठता के दंभ को ख़ारिज करता है। जनजातीय साहित्य की कोई केन्द्रीय विधा नहीं है। अन्य साहित्यों की तरह उसमें आत्मकथात्मक लेखन भी उपलब्ध नहीं होता, क्योंकि जनजातीय समाज 'मैं' में नहीं, 'हम' में विश्वास करता है। उसकी अभिव्यक्ति प्रतीकों के माध्यम से होती है। वह सामूहिकता की बात करता हैं 'हम' की चिंता करता है। इसलिए जनजातीय लेखकों ने अपने संघर्ष में कविता को मुख्य हथियार बनाया है। जनजातीय साहित्य अपने दायरे में अन्य उत्पीड़ित अस्मिताओं के प्रति संवेदनशील है। इसके अंतर्गत शब्द, नृत्य, गीत, संगीत, चित्र, प्रकृति और समूची समष्टि समाहित हैं। साहित्य इन सभी अभिव्यक्तियों का समुच्चय है। आदिवासी दर्शन और साहित्य की अवधारणा है-

> सृष्टि सर्वोच्च नियामक सत्ता है। संपूर्ण सजीव और निर्जीव जगत तथा प्रकृति सबका अस्तित्व एक समान है। मनुष्य का धरती, प्रकृति और सृष्टि के साथ सहजीवी संबंध है।(टेटे, सं 2021:34)

डॉ. गंगासहाय मीणा के अनुसार-

> जनजातीय साहित्य अपनी रचनात्मक ऊर्जा आदिवासी विद्रोह की परंपरा से लेता है। 1991 के बाद आर्थिक उदारीकरण की नीतियाँ तेज़ हुईं। जनजातीय शोषण की प्रक्रिया के प्रतिरोध स्वरूप जनजातीय अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर पर पैदा हुई रचनात्मक ऊर्जा जनजातीय साहित्य है। इसमें सैंकड़ों भाषाएँ बोलने वाले देश भर के जनजातीय रचनाकार बढ़-चढ़ कर हिस्सा ले रहे हैं। इसका भूगोल, समाज, भाषा, संदर्भ से शेष साहित्य से उसी तरह पृथक है, जैसे स्वयं जनजातीय समाज यह जनजातीय साहित्य की अवधारणा के निर्माण का दौर है। जनजातीय साहित्य अस्मिता की खोज, दिकुओं द्वारा किये जा रहे शोषण के विभिन्न रूपों के उद्घाटन तथा आदिवासी संकटों और उसके ख़िलाफ़ हो रहे प्रतिरोध का साहित्य है।(अमीन, सं 2016:93)

नब्बे के दशक के पश्चात् हिंदी एवं आदिभाषी भाषाओं में लेखकों की उल्लेखनीय संख्या दिखाई देती है। रामदयाल मुंडा, मंजू ज्योत्सना, हेराल्ड एस तोपनो, वाल्टर भेंगरा 'तरूण', मंगल सिंह मुंडा, सिकरा दास तिर्की (मुंडारी भाषा), निर्मला पुतुल, बाबूलाल मुर्मू आदिवासी, शिशिर टुडु, आदित्य मित्र 'संताली' (संताली भाषा), रोज केरकेट्टा, वंदना टेटे, सरोज केरकेट्टा, जोवाकिम टोपनो, ग्लोरिया सोरेंग (खड़िया भाषा), एलिस एक्का, पीटरपॉल एक्का, जेम्स टोप्पो, महोदव टोप्पो, ग्रेसकुजुर (कुडुख भाषा), भुजंग मेश्राम, वाहरू सोनवणे, विनायक तुमराम, महादेव हांसदा (मराठी), निर्मल मिंज, दयामणि बारला, इग्नाशिया टोप्पो, वासवी कीड़ो, लटारी कवडू मडावी, परिमल हैम्ब्रम, जेवियर कुजुर, जसिंता केरकेट्टा, सुनील मिंज, अनुज लुगुन, ग्लैडसन डुंगडुंग, फिलिप कुजुर, सुषमा असुर, दमयन्ती सिंकू, फ्रांसिस्का कुजुर, शांति खलखो, बिटिया मुर्मू, हरिराम मीणा, शंकर लाल मीणा, लक्ष्मण गायकवाड़ इत्यादि जनजातीय रचनाकार अपनी मातृभाषा के साथ हिंदी में भी विविधतापूर्ण लेखन कार्य कर जनजातीय जीवन के संघर्ष व प्रतिरोध को स्वर प्रदान कर रहे हैं।साहित्य जगत में जनजातीय मुद्दों को उठाने, उनसे जुड़े सृजनात्मक साहित्य को प्रोत्साहन देने में इन पत्रिकाओं ने अहम योगदान दिया है- युद्धरत आम आदमी' (दिल्ली, हजारीबाग. संपादक- रमणिका गुप्ता), 'अरावली उद्घोष' (उदयपुर, संपादक- बीपी वर्मा 'पथिक'), 'झारखंडी भाषा साहित्य, संस्कृति अखड़ा' (रांची, संपादक- वंदना टेटे), 'आदिवासी सत्ता' (दुर्ग, छत्तीसगढ. संपादक-केआर शाह) आदि।

निष्कर्ष:

जनजातीय समाज के लोग मूल रूप से प्रकृतिजीवी और उत्सवधर्मी प्रवृति के होते हैं।वे कला के प्रति पूर्णतः समर्पित होते हैं।उनके व्यवहार, रहन-सहन, संस्कृति, उनके पर्व, लोकगीत, उनकी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक गतिविधि सभी जनजातीय साहित्य के अंतर्गत आते हैं, जिन्हें इस आलेख के माध्यम से चित्रित करने का प्रयास किया गया है। उनका साहित्य गल्प मात्र न

होकर यथार्थपरक है। जब किसी विशेष समुदाय द्वारा भोगा जीवन लिखा और पढ़ा जाने लगे, तो उसे साहित्य माना जाने लगता है। उपर्युक्त लेख में यह दिखाने का प्रयास भी किया गया है कि देश के भिन्न-भिन्न हिस्सों में विद्यमान जनजातियाँ अपने अनुकूल जीवन जीती हैं।उनका जीवन व्यवहार एक-दूसरे से भी नितांत भिन्न है। जनजातीय साहित्य एक धरोहर है,कला और संस्कृति का एक ऐसा पक्ष है, जिसे देश और दुनिया को जानना आवश्यक है। वह मुख्य धारा के मनुष्यों से ज्यादा प्रकृति के करीब हैं और जन, जंगल, जमीन उनकी विरासत।

ग्रंथ-सूची :

अमीन, खन्नाप्रसाद, सं.आदिवासी साहित्य.दिल्ली: श्री नतराज प्रकाशन, 2016.

टेटे, वंदना, सं.आदिवासी दर्शन और साहित्य.प्रथम. चेन्नई:नोसन प्रेस, 2021.

पांडेय, सतीश, शीतला प्रसाद और उषाकीर्ति, सं.आदिवासी केंद्रित हिंदी उपन्यास.नई दिल्ली:हिंदी बुक सेंटर, 2012.

वेरियर, एलविन.“आदिवासियों की कला”. आदिवासी साहित्य 2.7-8 (जुलाई-दिसंबर, 2016)

सोनवणे, वाहरू.“आदिवासी कला, साहित्य और संस्कृति”. आदिवासी साहित्य 2.7-8 (जुलाई-दिसंबर, 2016)

संपर्क-सूत्र :
सहायक प्रोफ़ेसर
स्वामी श्रद्धानंद
दिल्ली विश्वविद्यालय